कथा मंच

मौन

कमरे के अंदर अचानक ही किसी झगड़े की आवाज सुनाई पड़ी। मुझे महसूस हुआ कि आवाज मेरे बराबर के कमरे अर्थात् प्रोफेसर विकास के कमरे की ओर से आ रही है। मैंने चौंककर अपनी सीट छोड़ी और तुरंत अपने कमरे से बाहर निकल आया। सामने नेहा ठाकुर जोकि प्रोफेसर विकास के दिशा निर्देशन में अपना शोध कार्य कर रही थी, वह जोर-जोर से विकास जी पर चिल्ला रही थी। शाम का समय था, विश्वविद्यालय का परिसर लगभग खाली होने लगा था। ऐसे में इस दृश्य का साक्षी केवल मैं ही नहीं था, घर जाने की जल्दी में बाहर खड़े दो-तीन और प्रोफेसर भी थे। मुझे सामने से आता देख विकास जी लगभग असहजता की मुद्रा में आ गए थे। उनकी यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी, क्यूंकि नेहा ठाकुर शोधार्थी होने के साथ-साथ एक स्त्री भी थी किंतु मैं जितना समझ पा रहा था, नेहा गुस्से से भरी हुई थी।

'आप केवल मेरे शोध निर्देशक हैं, मेरे गुरु नहीं। इसी कारण से अब तक आपका सम्मान था। अब जब मैं महसूस कर रही हूं कि आप अपने पथ से भ्रष्ट हो चले हैं। ऐसे में आप मुझे क्या ही निर्देश दे पाएंगे।' नेहा लगभग बिना भयभीत हुए बोलती चली गई।

'तुम अपनी सीमाओं को पार कर रही हो। एक शिक्षक का जरा भी सम्मान नहीं तुम्हें? तुम अब यहां से सीधे अपने घर जाओगी। तुम्हारे जैसे शोधार्थियों की यहां कोई आवश्यकता नहीं है।'

प्रोफेसर विकास ने मेरी मौजूदगी के चलते अपने सम्मान की रक्षा करते हुए कहा था।

बहस को बढ़ते हुए देख मैंने जैसे ही उन दोनों के बीच में पड़ने का प्रयास किया ही था कि तुरंत नेहा ने अपनी आंखों को तरेर कर गुस्से की सीमाओं के भीतर रहते हुए अजीब भाव से प्रोफेसर विकास की ओर कदम बढ़ाते हुए, लगभग उनके करीब आकर एक चुनौतीपूर्ण ढंग से अपनी बात रखते हुए कहा-'सर पीएचडी तो मैं इसी विभाग से पूरी करूंगी, वह भी आपकी आंखों के सामने। मैं आपसे कहती हूं.. आप जो चाहे कर लें।'

'तुम... तुम... तुम... अपने आप को समझती क्या हो?' प्रोफेसर विकास

प्रो. तारु एस. पवार
केसरगोड, केरल
मोबाईल - 9844374432
ईमेल
tarusp@cukerala.ac.in

लगभग अपने-आपे को संभालते हुए बोले।

'विकास सर... सर ...सर...।' मैंने लगभग रोकने का प्रयास किया था। मेरी जगह कोई भी होता यही करता। नेहा तब तक अपने चुनौतीपूर्ण वक्तव्य को पूरा करते हुए, पैर पटककर, मुड़कर वहां से चली गई थी।

उसके बाहर आते ही पहले से ही बाहर खड़े अन्य प्राध्यापक गणों में से किसी एक ने नेहा से पूछा- "नेहा क्या हुआ? आप ठीक है ?" किंतु नेहा ने इस प्रश्न का उत्तर देना उचित नहीं समझा और सीधे वहां से आगे बढ़ गई।

उधर मैं प्रोफेसर विकास को शांत करने के अपने प्रयास में लग गया था। इतने में बाहर मौजूद अन्य सभी प्रोफेसरों ने भी विकास जी के कमरे के भीतर आकर समाधान करने का औपचारिक सा प्रयास किया और फिर धीरे-धीरे वहां से निकल गए।

प्रोफेसर विकास अपने माथे पर हाथ धरे तथा अपने बाएं हाथ की उंगलियों को अपने माथे पर फिराते हुए मेरी ओर देखकर बोले-'देख रहे हैं ना सुभाष सर, आजकल के शोधार्थियों को, जरा काम क्या पूछा, अपनी सीमाएं भूल जाते हैं। इस लड़की ने पिछले दो सालों में एक भी सत्रांत प्रगति रिपोर्ट नहीं दिया और आज पूछने पर हंगामा खड़ा कर दिया, कहती है-'प्रगति रिपोर्ट जैसा कुछ भी नहीं होता। आप तो मुझे परेशान करने का मौका ढूंढते रहते हैं सर।' अब आप देखना...सर! मैं भी चुप नहीं बैठूंगा।'

'आप अभी शांत हो जाइए सर...।' मैं उनके कंधे पर हाथ रखकर केवल इतना ही बोल पाया था क्योंकि इससे ज्यादा मैं बोल भी नहीं सकता था या बोलना नहीं चाहता था। इसे मेरी या एक शिक्षक की मजबूरी ही समझ लीजिए। खासतौर पर तब, जब किसी महिला शोधार्थी का मसला हो, कोई एक-दूसरे के बीच में पड़ना नहीं चाहता।

घर लौटते समय विभाग की घटना का दृश्य मेरी आंखों के सामने तैर रहा था। मैं एक शिक्षक होने के नाते प्रोफेसर विकास के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित था। डॉ. विकास आंबेडकर की विचार-धारा को मानने वाले प्रोफेसर थे। संवि-धान पर उन्हें अटूट विश्वास था। इसलिए वे हमेशा नियमों का पालन करने की ओर जोर देते थे।

आज की घटना ने मुझे अपने शोधार्थी जीवन की स्मृतियों की ओर धकेल दिया था। वहां भी ना तो मैं स्वयं के लिए लड़ सका था और ना ही अपने सीनियर श्रीधर को सहानुभूति के दो शब्द तक बोल पाया था। सवर्ण शोधार्थी हो या शिक्षक, हमेशा दलित को दबाने में कोई कसर नहीं छोड़ते।

आज एक शोधार्थी, प्रोफेसर विकास के सामने अपने सवर्ण होने का दंभ दिखा रही थी। दलित होने के कारण जैसा अपमान विकास जी झेल रहे हैं। उन्हीं की भांति ही श्रीधर अपने शोध निर्देशक द्वारा जातीय शोषण को झेल रहे थे। वह अलग बात है कि एक दलित होने के कारण मैं स्वयं कितनी ही बार अपमानित होता रहा हूं।

जब हम छोटा महाबलेश्वर विश्व-विद्यालय में शोधार्थी थे, तब हुसैन शोधार्थी होने के साथ ही उसी विश्वविद्यालय के किसी महाविद्यालय में अतिथि शिक्षक के रूप में भी कार्यरत था। एक दिन उसी ने अपने सहपाठी श्रीधर की प्रशंसा करते हुए विभाग के एक होनहार शोधार्थी के रूप में उसे हम सबसे मिलवाया था।

श्रीधर उत्तर कर्नाटक के दलित समुदाय से आता था। जैसा कि श्रीधर एक बहुत मेहनती छात्र था और अपनी काबिलियत के दम पर यहाँ तक पहुंचा था। निस्संदेह उसके संघर्ष भी कम ना थे। उसने सोचा था कि शायद यह पीएचडी उसकी नैया पार कराएगी परंतु वह क्या ही जानता था कि पीएच.डी. में भी उसके दुखों और संघर्षों की निरंतरता बनी रहेगी तथा उसके हिस्से में आएगा प्रोफेसर इरेश मठ जोकि उसका शोध निर्देशक था या यूँ कहाँ जाए जिसे मानव बनने के लिए स्वयं किसी के निर्देशन की आवश्यकता थी। जिसने अपनी प्राप्त की हुई शिक्षा को शर्मसार कर दिया था। उसका प्राप्त किया हुआ ज्ञान कहीं मुँह छिपाएं खड़ा था। एक पढ़ा-लिखा अज्ञानी, एक सचमुच के अज्ञानी से ज्यादा खतरनाक होता है। प्रोफेसर इरेश मठ इसका अच्छा उदाहरण था।

कहते हैं जिस घर का मुखिया ही खराब हो उस घर की प्रगति में स्वत: ही अवरोध उत्पन्न हो जाता है। ऐसे में विभाग की बागडोर प्रोफेसर इरेश मठ के ही हाथों में थी। हिंदी विभाग कहने को तो विद्या का केंद्र था किंतु अगर उसे सवर्णो का अड्डा कहा जाए तो भी गलत ना होगा। कहते हैं ना जो अधिक ताकतवर होता है, वह कमजोर को दबाता ही है। हालांकि यह दबना-दबाना विश्वविद्यालयों में शोभा नहीं देता लेकिन यह उस विभाग की सच्ची तस्वीर थी जो विभागीय चेयरमैन इरेश मठ के दिशा निर्देशन में चल रहा था।

प्रोफेसर साहब छुआछूत तथा जातिगत भेदभाव में पक्का विश्वास

रखते तथा विभाग के अन्य सवर्ण शिक्षक उनके विश्वास पर विश्वास रखते थे। जिसका नतीजा यह होता कि विभाग में शिक्षकों के कई गुट तैयार हो जाते तथा आपसी गुटबाजी चलती ही रहती। कुल मिलाकर विभाग का माहौल नकारात्मकता से भरा हुआ था जो वहां पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं पर भी असर डालता था।

एक दिन हम सभी हुसैन के साथ प्रोफेसर इरेश मठ का इंतजार कर रहे थे। इसका कारण भी बहुत खास था। श्रीधर की नई किताब आई थी। नई इसलिए कि पहले भी उसकी कई और किताबें आ चुकी थी। उस दिन वह बहुत उत्साहित था। उसे लगा कि वह अपने गाइड को अपनी किताब की पहली प्रति भेंट करेगा और बदले में उससे अपने भविष्य के प्रति प्रोत्साहन और आशीर्वाद अर्जित करेगा।

प्रोफेसर इरेश मठ का स्कूटर हमेशा एक अजीब-सी आवाज निकालता था। जिससे ज्यादातर लोगों को तुरंत पता चल जाता था कि प्रोफेसर साहब विश्वविद्यालय में पदार्पण कर चुके हैं। उस दिन मैंने ही एकदम से उनके खटारा स्कूटर की आवाज सुनकर कहा था। 'आ गया यमराज' और साथ में खड़े सभी लोग खिल-खिलाकर हंस पड़े थे। खैर! खिल-खिलाहटों को तुरंत बंद कर देने का अवसर था क्योंकि उसकी मौजूदगी में हंसना, ना काबिले बर्दाश्त, की श्रेणी में आता था। सब के सब चुपचाप उसकी राह तकने लगे। तभी प्रोफेसर इरेश मठ सामने से अपने कक्ष की ओर आते दिखाई पड़े। उनके समीप आते ही हुसेन ने बड़ी प्रसन्नता का भाव लिए प्रोफेसर साहब को उनके शोधार्थी श्रीधर की नई किताब आने की सूचना दी। इतने में स्वयं श्रीधर अपने गाइड की ओर अपनी किताब लेकर आगे बढ़ा और कहने लगा- 'सर यह मेरी पुस्तक जो कि कन्नड़ कविताओं का संकलन है 'नग अन्द्र ह्यॉंग नगली' ('हँस कहे तो कैसे हँसू') आपको भेंट करने का इच्छुक हूँ। कृपया करके इसे स्वीकार करें। सर मेरा यह सौभाग्य होगा'

इतना बोलते हुए श्रीधर ने अपनी किताब प्रोफेसर के समक्ष बढ़ा दी। ऐसा बोलते हुए श्रीधर के चेहरे पर मिश्रित भाव थे। खुशी से उसका चेहरा दमक रहा था किंतु एक अजीब से भय ने मानो! उसकी आंखों की पलकों को ऊपर उठने ही ना दिया था।

'क्या-क्या! शीर्षक बताया तुमने?' 'नग अन्द्र ह्यांग नगली' ('हंस कहे तो कैसे हँसू')'

'जाओ पहले एक और किताब लिखो तथा उसका शीर्षक दो-'नग अन्द्र हिंग नगू' ('हँस कहे तो ऐसे हँसो')'

इतना कहकर तथा व्यंग्य से 'हाऽ हाऽऽ हाऽऽऽ' कर हंसते हुए वह अपने कक्ष के भीतर चला गया।

उसके लिए यह कोई नई बात बिल्कुल नहीं थी क्योंकि दलित छात्रों को सताना तथा कदम-कदम पर उनको अपमानित कर, नीचा दिखाना प्रोफेसर इरेश मठ के लिए बहुत ही सहज था। इसका असर यह होता था कि कुछ दलित छात्र डर की वजह से दिन-रात उनकी सेवा-शुश्रूषा में लगे रहते और विभाग में उनके लिए पोस्टमैन के रूप में तथा घर में नौकर की तरह काम किया करते थे।

एक बार मैं स्वयं प्रोफेसर इरेश मठ का शिकार बना था, क्योंकि मैं भी एक दलित समुदाय से ही संबंधित हूं। ऐसे में मुझे सताने का अवसर उसे उस दिन मिल ही गया था, जब मैं उससे अपनी मासिक प्रगति रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करवाने गया था। जैसे ही मैंने मेरी रिपोर्ट उसके हाथ में दी। पहले तो उसने उस रिपोर्ट को नजर भर देखा और अगले ही क्षण अपने दाएं हाथ से अपनी कुर्सी के एकदम बगल में रखे कूड़ेदान में फेंक दिया।

आज उसके लिए एक साथ दो शिकार थे। एक तो मेरे गाइड जो कि स्वयं दलित थे और दूसरा मैं उसके सामने था। एक तीर से दो शिकार की इस प्रक्रिया के दौरान प्रोफेसर इरेश मठ ने मेरी ओर बिल्कुल ना देखा। जीवन की विपरीत परिस्थितियों ने मुझे ढीठ बना दिया था। अपनी इसी ढीठता का परिचय देते हुए मैं भी वहाँ खड़ा रहा। चूंकि मेरे गाइड पहले से ही प्रोफेसर इरेश मठ की हरकतों को झेल चुके थे। बदकिस्मती से एक समय में वे स्वयं इनके शिष्य रह चुके थे। ऐसे में उन्होंने एक जैसी दो रिपोर्ट पर अपने हस्ताक्षर करके मुझे पहले ही दे दिये थे। जिसमें से एक तो इरेश मठ

उस दिन जब मैंने श्रीधर को मुस्कुराते हुए देख तो मैं उससे पूछ बैठा, 'क्या बात है सर? आपकी मुस्कुराहट बहुत कुछ कह रही है। क्या मैं सही समझ रहा हूं?'

इतना सुनकर श्रीधर की मुस्कुराहट हंसी में तब्दील हो गई थी। वह बोला- 'तुम सही समझ रहे हो दोस्त, लेकिन सच कहूं तो मेरी मुस्कुराहट के साथ-साथ मेरे चेहरे पर छुपे भय को भांपने में तुम जरा चूक गए।'

पहले ही कूड़ेदान को नजर कर चुके थे। दूसरी मेरी जेब में थी। जिसे निकालकर मैंने जैसे ही प्रोफेसर इरेश मठ के सामने रखकर यह पूछा कि- 'सर, अगर कहीं कोई गलती हो गई है तो कृपया करके बताइए, मैं ठीक करवाके वापस ले आऊंगा।'

प्रोफेसर इरेश मठ ने मेरी ओर घूर कर देखा और कहा-'गलती मुझसे नहीं, अपने गाइड से सही कराइए जिन्होंने तुम्हें यहां भेजा है।'

थोड़ी देर बाद फिर कहा-'गाइड इसी काम के लिए ही तो होते हैं' और इतना कहकर उसने अपना मुँह मेरी ओर से वापस मोड़ लिया।

अपनी सहनशीलता को हथियार बनाते हुए मैंने हिम्मत करके प्रति उत्तर दिया-'मेरे गाइड के हस्ताक्षर स्वयं इस बात का प्रमाण है की रिपोर्ट सही है।'

मेरा इतना कहना ही था कि प्रो. इरेश मठ तिलमिला उठे और तुरंत मुझे अपने कमरे से बाहर निकाल दिया। उनके इस व्यवहार से मैं बहुत डर गया था।

श्रीधर इस बार केवल डरा ही नहीं बल्कि वह तो मानो! संघर्षों और दु:खों की निरंतरता से हार ही गया। उस दिन जब मैंने श्रीधर को मुस्कुराते हुए देखा तो मैं उससे पूछ बैठा-'क्या बात है सर? आपकी मुस्कुराहट बहुत कुछ कह रही है। क्या मैं सही समझ रहा हूँ?'

इतना सुनकर श्रीधर की मुस्कुराहट हँसी में तब्दील हो गई थी। वह बोला- 'तुम सही समझ रहे हो दोस्त, लेकिन सच कहूं तो मेरी मुस्कुराहट के साथ-साथ मेरे चेहरे पर छुपे भय को भांपने में तुम जरा चूक गए। खैर! काम लगभग समाप्त हो गया है, एक बार गाइड पूरे कार्य को देख लें, तब जल्दी ही पीएच.डी. जमा कर तुम लोगों से विदा लूंगा।'

आज उसके लिए एक-साथ दो शिकार थे। एक तो मेरे गाइड जो की स्वयं दलित थे और दूसरा मैं उसके सामने था। एक तीर से दो शिकार की इस प्रक्रिया के दौरान प्रोफेसर इरेश मठ ने मेरी ओर बिल्कुल ना देखा। जीवन की विपरीत परिस्थितियों ने मुझे ढीठ बना दिया था। अपनी इसी ढीठता का परिचय देते हुए मैं भी वहां खड़ा रहा।

'जरूर सर, ऑल द वेरी बेस्ट' इतना कहकर मैंने श्रीधर को आगे बढ़ने का रास्ता दिया।

श्रीधर अपने दोनों हाथों में अपने पाँच साल की मेहनत को ऐसे लिए जा रहा था, मानो! इस संपत्ति के बदले में उसको पूरा जहाँ मिलने वाला हो। जहाँ तो नहीं मिला लेकिन अपमान इतना मिला कि उसका इस जहाँ से विश्वास ही उठ गया था। उसकी मेहनत से किए गए शोध कार्य के एक भी पन्ने को पलटने की जहमत उठाए बिना प्रोफेसर इरेश मठ ने पूरी की पूरी फाइल को अपने कक्ष की खिड़की से बाहर फेंक दिया। श्रीधर पहले तो हकबका गया, बाद में वह पागलों की भांति सीढ़ियों से नीचे की ओर भागा क्योंकि उसके प्रोफेसर का कक्ष विश्व-विद्यालय की पहली मंजिल पर था। और उसी के नीचे भू-तल पर भारतीय स्टेट बैंक था। बैंक के द्वार को लगकर एक पेड़ था। उसी की सीध में ऊपर पहली मंजिल पर प्रोफेसर इरेश मठ के कमरे की खिड़की थी। विश्वविद्यालय में अपना-अपना दाखिला पक्का करने के लिए नये विद्यार्थियों की भीड़ लगी हुई थी, साथ में अन्य ग्राहकों का भी तांता लगा हुआ था। इसी भीड़ के बीच श्रीधर जमीन पर पड़े अपने शोध के पन्नों को एक-एक करके चुन रहा था। बहुत सारे पन्ने प्रोफेसर इरेश मठ की खिड़की के बाहर लगे पेड़ पर गिरकर जगह-जगह अटक गए थे। ऊपर अटके हुए उन पन्नों को वह ताकता और हवा के झोंकों का आह्वान करता। ऐसे में कोई पन्ना हवा से उड़कर जैसे ही नीचे की ओर आता तो वह दौड़ता और उसे पकड़ने की कोशिश करता। और फिर हर प्राप्त हुए पन्ने को पकड़कर अपनी छाती से लगाता। मेरे लिए यह दृश्य अपार करुणा से भरा हुआ था लेकिन वहाँ खड़ी उस भीड़ के लिए यह मौन रुदन, परिहास का दृश्य था।

धीरे-धीरे यह रुदन उसके चेहरे से टपकने लगा, श्रीधर की आँखें आँसुओं से लबालब भरी थी। उसकी मेहनत से लिखा एक-एक पन्ना उसे एकदम खाली प्रतीत हो रहा था। जो पन्ने उसके हाथ ना लगे थे उनके प्रति भी मोह जैसे खत्म होता जा रहा था। इस मेहनत ने उसके पाँच साल ले लिए थे। अपने गाइड के बिना किसी सुझाव और निर्देशन के अभाव के चलते वह स्वयं को लाचार महसूस कर रहा था। आगे का रास्ता मानो! प्रोफेसर इरेश मठ ने एक संवादहीन दीवार के पीछे छुपा दिया था। जाहिर है बिना आपसी वार्तालाप के कोई रास्ता नहीं निकलता और प्रोफेसर इरेश मठ ने श्रीधर को किसी भी संवाद के लिए कभी कोई अवसर देना जरूरी नहीं समझा था। ऐसे में भविष्य में प्रोफेसर इरेश मठ के साथ किसी

भी प्रकार के संवाद की अपेक्षा करना उसे बेमानी-सा प्रतीत होने लगा था।

उसके कुछ साथी उस वक्त उसके साथ बिखरे पन्नों को समेटने का कार्य कर रहे थे। जब कुछ भी समेटने को ना बचा तब उन्होंने अपने साथी के टूटे हुए मनोबल को पुनः जोड़ने का प्रयास करना शुरू कर दिया।

शाम होने तक यह खबर धीरे-धीरे पूरे होस्टल में आग की तरह फैल गई। फैल तो गई लेकिन यह आग व्यवस्था के प्रति विद्यार्थियों के अंदर बसे भय की गहनता के कारण किसी के भी हृदय में चिंगारी लगाकर प्रतिरोध की भावना का प्रस्फुटन करने में असफल रही।

विश्वविद्यालय में होने वाली हड़तालों के केंद्र में कभी भी किसी दलित की व्यथा नहीं रही थी। इससे पहले भी न जाने कितनी ही ऐसी घटनाओं का साक्षी बेशक यह विश्वविद्यालय रहा था, लेकिन सवर्णों के अधिपत्य के कारण दीवारों के भी कान होते हैं लेकिन वे बोल नहीं सकती की तर्ज पर यह विश्वविद्यालय बरसों से मौन खड़ा था।

उस घटना ने श्रीधर को अवसाद की अवस्था में पहुंचा दिया था। अब वह पहले की तरह लोगों से ज्यादा मिलता-जुलता नहीं था, यहां तक कि उसने बोलना तक बंद कर दिया था। एक उदासी उसे हमेशा घेरे हुए रखती थी। धीरे-धीरे अवसाद निराशा की ओर उन्मुख होने पर जोर देने लगा फिर हुआ यूं कि असहनीय पीड़ा और बेचैनी ने उसे सहज ना रहने दिया और एक दिन वह किसी को भी बिना बताए पीएचडी छोड़कर चला गया था। गनीमत यह थी कि दुनिया छोड़कर नहीं गया था।

उसके बाद कई लोगों से मैंने उसके विषय में पूछताछ की थी। एक दिन किसी से पूछताछ के दौरान पता चला कि उसने अपने गांव में मजदूरी करना शुरू कर दिया है। इतना सुनकर मुझे आभास हुआ और लगा जैसे कि यह विश्वविद्यालय एक हत्यारा है, जिसने श्रीधर जैसी ना जाने कितनी ही दलित प्रतिभाओं की हत्याएं पहले भी की होंगी। ऐसा भी लगा जैसे हम एक-एक कर अपनी अपनी हत्याओं के लिए अपनी अपनी बारी का इंतजार कर रहे हैं। जीवन को नष्ट करने वाले इस नरभक्षी परिवेश के चंगुल से मुक्त हो जाना आसान नहीं था।

मैं भी वहां से आजाद जरूर हुआ था लेकिन यह आजादी आज तक मुझे इतना परिपक्व तथा निडर नहीं बना सकी जिससे कि मैं किसी भी प्रकार के तथा किसी के भी साथ होने वाले छल कपट के विरोध में उनका साथ दे पाऊं, लेकिन आज सवर्ण व्यवस्था के खिलाफ प्रोफेसर विकास की आवाज मुझे अपनी दबी हुई आवाज की भांति लगी। उसकी आवाज में मुझे अपने मौन की मुक्ति का अहसास हुआ। आज मैं एक अजीब-सी संतुष्टि के भाव को महसूस कर रहा था।□

विचार का वितान

डॉ. आंबेडकर ने कहा था...

स्वतंत्रता रहस्य है साहस का और साहस व्यक्तियों द्वारा एक दल में बंधा जाने से उत्पन्न होता है।

जेनिंग्स ने कहा था...

यदि विपक्ष नहीं है तो लोकतंत्र भी नहीं है। महामहिम का विपक्ष कोई निरर्थक उक्ति नहीं होती। महामहिम को विपक्ष भी चाहिए तथा सरकार भी।

बाल्फोर ने कहा था...

यदि हमें उस दीर्घकालीन प्रक्रिया के सही आधार को खोजना है जिसमें मध्यकालीन राजतंत्र को आधुनिक लोकतंत्र में परिणत किया है और जिसके द्वारा अत्यधिक परिवर्तन हुआ है व अतिअल्प विनाश हुआ है, तो हमें प्रतिभा और सिद्धांत के स्थान पर स्वभाव और चरित्र का अध्ययन करना ही होगा।